वसुदेवसुतं देवं, कंसचाणूरमर्दनम् ।

देवकीपरमानन्दं, कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।१।।

मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्दमाधवम् ।।२।।

धृतराष्ट्र बोले – हे संजय, धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए युद्ध के इच्छुक मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या-क्या किया? (१.०१)

संजय बोले– इस तरह करुणा से व्याप्त, आंसू भरे, व्याकुल नेत्रों वाले, शोकयुक्त अर्जुन से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा. (२.०१)

श्रीभगवान् बोले – हे अर्जुन, तू ज्ञानियों की तरह बातें करते हो, लेकिन जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए शोक करते हो. ज्ञानी मृत या जीवित किसी के लिए भी शोक नहीं करते. (२.११)

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार कर दूसरे नये वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर प्राप्त करता है. (२.२२)

सुख-दुख, लाभ-हानि, और जीत-हार की चिन्ता न करके मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार कर्तव्य कर्म करना चाहिए. ऐसे भाव से कर्म करने पर मनुष्य को पाप नहीं लगता. (२.३८)

केवल कर्म करना ही मनुष्य के वश में है, कर्मफल नहीं. इसलिए तुम कर्मफल की आसक्ति में न फँसो, तथा अपने कर्म का त्याग भी न करो. (२.४७)

कर्मफल की आसक्ति त्याग कर काम करने वाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तू निष्काम कर्मयोगी बन. निष्काम कर्मयोग को ही कुशलता पूर्वक कर्म करना कहते हैं. (२.५०)

जैसे जल में तैरती नाव को तूफान उसे अपने लक्ष्य से दूर ढ़केल देता है, वैसे ही इन्द्रिय सुख मनुष्य की बुद्धि को गलत रास्ते की ओर ले जाता है. (२.६७)

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको कर्ता समझ लेता है, तथा कर्मफल के बंधनों से बंध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र है. (३.२७)

आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, (सेवा, ध्यान, पूजन, आदि से किए हुए शुद्ध) बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो, तुम इस दुर्जय कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (३.४३)

हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब- तब मैं, परब्रह्म परमात्मा, प्रकट होता हूँ. (४.०७)

मेरे द्वारा ही चारो वर्ण अपने-अपने गुण, स्वभाव, और रुचि अनुसार बनाए गए हैं. सृष्टि के रचना आदि कर्म के कर्ता होनेपर भी मुझ परमेश्वर को अविनाशी तथा अकर्ता ही जानना चाहिए, क्योंकि प्रकृति के गुण ही संसार चला रहे हैं. (४.१३)

जो मनुष्य कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखता है वही ज्ञानी, योगी, तथा समस्त कर्मों का करने वाला है. अपने को कर्ता नहीं मान कर प्रकृति के गुणों को ही कर्ता मानना कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखना कहलाता है. (४.१८)

यज्ञ का अर्पण, घी, अग्नि, तथा आहुति देनेवाला सभी परब्रह्म परमात्मा ही है. इस तरह जो सब कुछ परमात्मा स्वरूप देखता है, वह परमात्मा को प्राप्त होता है. (४.२४)

कर्मयोग मनुष्य के चित्त और बुद्धि को शुद्ध करके उसके सभी कर्मों को पवित्र कर देता है. ठीक समय आने पर शुद्ध बुद्धि द्वारा योगी ईश्वर का दर्शन करता है. (४.३८)

हे अर्जुन, कर्मयोग की निःस्वार्थ सेवा के बिना शुद्ध संन्यास-भाव, अर्थात सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग, प्राप्त होना कठिन है. निष्काम कर्मयोगी शीघ्र ही परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है. (५.०६)

जो मनुष्य कर्मफल में लोभ और आसक्ति त्यागकर, सभी कर्मों को परमात्मा में अर्पण करता है, वह कमल के पत्ते की तरह पापरूपी जल से कभी लिप्त नहीं होता. (५.१०)

जो मनुष्य सब जगह तथा सब में मुझ परब्रह्म परमात्मा को ही देखता है, और सबको मुझ में ही देखता है, मैं उससे अलग नहीं रहता तथा वह भी मुझ से दूर नहीं होता. (६.३०)

हे अर्जुन, चार प्रकार के उत्तम पुरुष – दुख से पीड़ित, परमात्मा को जानने की इच्छा बाले जिज्ञासु, धन या किसी इष्टफल की इच्छा वाले, तथा ज्ञानी – मुझे भजते हैं. (७.१६)

अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर कि "यह सब कुछ कृष्णमय है," मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं; ऐसे महात्मा बहुत दुर्लभ हैं. (७.१९)

अज्ञानी मनुष्य मुझ परब्रह्म परमात्मा के – मन, बुद्धि, तथा वाणी से परे, परम अविनाशी – दिव्यरूप को नहीं जानने और समझने के कारण ऐसा मान लेते हैं कि मैं बिना रूप वाला निराकार हूँ, तथा रूप धारण करता हूँ. (७.२४)

हे अर्जुन, मनुष्य मरने के समय जिस किसी भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह सदा उस भाव के चिन्तन करने के कारण उसी भाव को प्राप्त होता है. (८.०६)

इसलिए हे अर्जुन, तू सदा मेरा स्मरण कर, और अपना कर्तव्य कर. इस तरह मुझ में अर्पण किए मन और बुद्धि से युक्त होकर निःसन्देह तुम मुझको ही प्राप्त होगा. (८.०७)

जो भक्तजन अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ. (९.२२)

जो मनुष्य प्रेमभक्ति से पत्र, फूल, फल, जल, आदि कोई भी वस्तु मुझे अर्पण करता है, तो मैं उस शुद्धचित्त वाले भक्त का वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, उसका भोग भी करता हूँ.

मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे प्रणाम कर. इस प्रकार मेरा परायण होने से तू मुझे ही प्राप्त होगे. (९.३४)

मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूं, और मुझ से ही जगत् का विकास होता है. ऐसा जानकर बुद्धिमान् भक्तजन श्रद्धापूर्वक मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं. (१०.०८)

हे अर्जुन, जो पुरुष मेरे लिए ही कर्म करता है, मुझ पर ही भरोसा रखता है, मेरा भक्त है, तथा जो आसक्ति रहित और निर्वैर है, वही मुझे प्राप्त करता है. (११.५५)

मुझ में ही अपना मन लगा, और बुद्धिसे मेरा ही चिन्तन कर, इसके उपरान्त निःसंदेह तुम मुझ में ही निवास करोगे. (१२.०८)

जो पुरुष अविनाशी परमेश्वर को ही समस्त नश्वर प्राणियों में समान भाव से स्थित देखता है, वही वास्तव में ईश्वर का दर्शन करता है. (१३.२७)

जो पुरुष अनन्य भक्ति से मेरी उपासना करता है, वह प्रकृति के तीनों गुणों को पार करके परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के योग्य हो जाता है. (१४.२६)

मैं ही सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित हूं. स्मृति, ज्ञान, तथा शंका समाधान (विवेक या समाधि द्वारा) भी मुझ से ही होता है. समस्त वेदों

के द्वारा जानने योग्य वस्तु, वेदान्त का कर्ता, तथा वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूँ. (१५.१५)

काम, क्रोध, और लोभ मनुष्य को नरक की ओर ले जाने वाले तीन रास्ते हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग करना चाहिए. (१६.२१)

वाणी वही अच्छी है जो दूसरों के मन में अशान्ति पैदा न करे; जो सत्य, प्रिय, और हितकारक हो; तथा जिसका उपयोग शास्त्रों के पढ़ने में हो. (१७.१५)

मुझे श्रद्धा और भक्ति के द्वारा ही जाना जा सकता है कि मैं कौन हूँ और क्या हूँ. मुझे जानने के पश्चात् मनुष्य मुझ में ही प्रवेश कर जाता है. (१८.५५)

हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रह कर अपनी माया के द्वारा मनुष्य को कठपुतली की तरह नचाता रहता है. (१८.६१)

सम्पूर्ण कर्मों (में अहंकार और आसक्ति) का परित्याग करके तुम केवल मेरा (विधान का) ही आश्रय लो. शोक मत करो, मैं तुम्हें समस्त पापों (अर्थात् कर्म के बन्धनों) से मुक्त कर दूंगा. (१८.६६)

जो पुरुष श्रद्धा और भक्ति पूर्वक (गीता के) इस ज्ञान का मेरे भक्तों के बीच प्रचार और प्रसार करेगा, वह मेरा सबसे प्यारा होगा और निःसन्देह मुझे प्राप्त करेगा. (१८.६८)

उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई मनुष्य नहीं होगा; और न मेरा उससे ज्यादा प्रिय इस पृथ्वी पर कोई दूसरा होगा. (१८.६९)

संजय बोले – जहां भी, जिस देश या घर में, शास्त्रधारी श्रीकृष्ण तथा शस्त्रधारी अर्जुन दोनों होंगे; वहीं श्री, विजय, विभूति, और नीति आदि सदा विराजमान रहेंगी. ऐसा मेरा अटल विश्वास है. (१८.७८)

Download from: www.gita-society.com/gitachalisa-SH.pdf